

निःशंकितगुणोनोच्चैरञ्जनोपि निरञ्जनः। संजातस्तु ततः सोपि पालनीयो बुधोत्तमैः ॥४७॥
सद्रत्नत्रयमण्डितोतिचतुरः श्रीमूलसङ्गाग्रणीः श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधसिन्धुर्महान्।
तच्छिष्यः कुमताद्रिभेदनपविः श्रीसिंहनन्दीमुनिर्जीयाद्भव्यसरोजनर्मलरविः स्वाचार्यवर्यः सताम् ॥४८॥
इति कथाकोशे निःशङ्किताङ्गेञ्जनचोरस्य कथा समाप्ता।

७. अनन्तमत्याः कथा

पादपद्मद्वयं नत्वा शर्मदं भक्तितोर्हताम्। निष्काक्षितगुणोद्योते वक्ष्येऽनन्तमतीकथाम् ॥१॥
अङ्गदेशेत्र विख्याते चारुः चम्पापुरीप्रभुः। वसुवर्धननामाभूद्राज्ञी लक्ष्मीमती सती ॥२॥
प्रियदत्तोऽभवच्छ्रेष्ठी परमेष्ठिप्रतीतिवान्। तद्भार्याङ्गवती नाम्ना धर्मकर्मविचक्षणाम् ॥३॥
तयोः पुत्री द्वयोजाता नाम्नानन्तमती सती। रूपलावण्यसौभाग्यगुणरत्नाकरक्षितिः ॥४॥
एकदा प्रियदत्तेन धर्मकीर्तिमुनीश्वरम्। नत्वा नन्दीश्वराष्टम्यां ब्रह्मचर्यं व्रतोत्तमम् ॥५॥
गृहीत्वाष्टदिनान्युच्चैः क्रीडया ग्राहिता सुता। सत्यं सतां विनोदोपि भवेत्सन्मार्गसूचकः ॥६॥

सम्यग्दर्शन के निःशंकित गुण का पालन कर अंजनचोर भी निरंजन हुआ, कर्मों के नाश करने में समर्थ हुआ। इसलिए भव्य पुरुषों को तो निःशंकित अंग का पालन करना ही चाहिए ॥४७॥

मूलसंघ में श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्कृष्ट रत्नों से अलंकृत थे, बुद्धिमान् थे और ज्ञान के समुद्र थे। सिंहनन्दी मुनि उनके शिष्य थे। वे मिथ्यात्वमतरूपी पर्वतों को तोड़ने के लिए वज्र के समान थे, बड़े पाण्डित्य के साथ वे अन्य सिद्धान्तों का खण्डन करते थे और भव्य पुरुष रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए वे सूर्य के समान थे। वे चिरकाल तक जीयें उनका यशःशरीर इस नश्वर संसार में सदा बना रहे ॥४८॥

७. अनन्तमती की कथा

मोक्ष सुख के देने वाले श्री अरिहन्त भगवान् के चरणों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अनन्तमती की कथा लिखता हूँ, जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन के निःकाक्षित गुण का प्रकाश हुआ है ॥१॥

संसार में अंगदेश बहुत प्रसिद्ध देश है। जिस समय की हम कथा लिखते हैं, उस समय उसकी प्रधान राजधानी चंपापुरी थी। उसके राजा थे वसुवर्धन और उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। वह सती थी, गुणवती थी और बड़ी सरल स्वभाव की थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था प्रियदत्त। प्रियदत्त को जिनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा थी। उसकी गृहिणी का नाम अंगवती था। वह बड़ी धर्मात्मा थी, उदार थी। अंगवती के एक पुत्री थी। उसका नाम अनन्तमती था। वह बहुत सुन्दर थी, गुणों की समुद्र थी ॥२-४॥

अष्टाह्निका पर्व आया। प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति मुनिराज के पास आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया। साथ ही में उसने अपनी प्रिय पुत्री को भी विनोद वश होकर ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। कभी-कभी

अन्यदा सम्प्रदानस्य कालेनन्तमती जगौ। दापितं ब्रह्मचर्यं मे त्वया तातेन किं पितः ॥७॥
 तेनोक्तं क्रीडया पुत्रि दापितं ते मया व्रतम्। तयोक्तं तात का क्रीडा व्रते धर्मे च शर्मदे ॥८॥
 श्रेष्ठी सुतां पुनः प्राह ननु पुत्रि व्रतं तदा। दत्तं तेष्टदिनान्येव कुलमन्दिरदीपिके ॥९॥
 तच्छ्रुत्वा सा सुतोवाच पितर्भद्वारकैस्तथा। मर्यादा विहिता नैव भवतापि मम व्रते ॥१०॥
 ततो मे जन्मपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं व्रतं हितम्। नियमस्तु विवाहेस्ति प्रोक्तवैवं परमार्थतः ॥११॥
 जैनशास्त्रार्थसन्दोहे संस्थिताभ्यासतत्परा। अथैकदा निजोद्याने दोलयन्तीं स्वलीलया ॥१२॥
 चैत्रे सद्यौवनोपेतामुल्लसत् रूपसम्पदम्। खगाद्रिदक्षिणश्रेणिकिन्नराख्यः पुराधिराट् ॥१३॥

सत्पुरुषों का विनोद भी सत्य मार्ग का प्रदर्शक बन जाता है। अनन्तमती के चित्त पर भी प्रियदत्त के दिलाये व्रत का ऐसा ही प्रभाव पड़ा। जब अनन्तमती के ब्याह का समय आया और उसके लिए आयोजन होने लगा, तब अनन्तमती ने अपने पिता से कहा—पिताजी! आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिया था न ? फिर यह ब्याह का आयोजन आप किसलिए करते हैं ? ॥५-७॥

उत्तर में प्रियदत्त ने कहा—पुत्री, मैंने तो तुझे जो व्रत दिलवाया था वह केवल मेरा विनोद था। क्या तू उसे सच समझ बैठी है ? ॥८॥

अनन्तमती बोली—पिताजी, धर्म और व्रत में हँसी विनोद कैसा, यह मैं नहीं समझी ?

प्रियदत्त ने फिर कहा—मेरे कुल की प्रकाशक प्यारी पुत्री, मैंने तो तुझे ब्रह्मचर्य केवल विनोद से दिया था और तू उसे सच ही समझ बैठी है, तो भी वह आठ ही दिन के लिए था। फिर अब तू ब्याह से क्यों इंकार करती है ? ॥९॥

अनन्तमती ने कहा—मैं मानती हूँ कि आपने अपने भावों से मुझे आठ ही दिन का ब्रह्मचर्य दिया होगा परन्तु न तो आपने उस समय मुझसे ऐसा कहा और न मुनि महाराज ने ही, तब मैं कैसे समझूँ कि वह आठ ही दिन के लिए था। इसलिए अब जैसा कुछ हो, मैं तो जीवनपर्यन्त ही उसे पालूँगी। मैं अब ब्याह नहीं करूँगी ॥१०-११॥

अनन्तमती की बातों से उसके पिता को बड़ी निराशा हुई; पर वे कर भी क्या सकते थे। उन्हें अपना सब आयोजन समेट लेना पड़ा। इसके बाद उन्होंने अनन्तमती के जीवन को धार्मिक-जीवन बनाने के लिए उसके पठन-पाठन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। अनन्तमती भी निराकुलता से शास्त्रों का अभ्यास करने लगी।

इस समय अनन्तमती पूर्ण युवती है। उसकी सुन्दरता ने स्वर्गीय सुन्दरता धारण की है। उसके अंग-अंग से लावण्य सुधा का झरना बह रहा है। चन्द्रमा उसके अप्रतिम मुख की शोभा को देखकर फीका पड़ रहा है और नखों के प्रतिबिम्ब के बहाने से उसके पावों में पड़कर अपनी इज्जत बचा लेने के लिए उससे प्रार्थना करता है। उसकी बड़ी-बड़ी और प्रफुल्लित आँखों को देखकर बेचारे

विद्याधरो स्मरोन्मत्तो नाम्ना कुण्डलमण्डितः। सुकेशीभार्ययोपेतः समागच्छन्नभोज्जणे ॥१४॥
 तां विलोक्य किमेतेन जीवितेनैतया विना। संचिन्त्येति गृहे धृत्वा स खगः पुनरागतः ॥१५॥
 तां बालिकां समादाय यावद्याति नभस्तले। आगच्छन्तीं तदावेक्ष्य स्वकान्तां कोपकम्पिताम् ॥१६॥
 संभीतः पर्णलध्व्याख्यविद्यया श्रेष्ठिनः सुताम्। महाटव्यां विटः सोपि मुक्तवान् शीलमण्डिताम् ॥१७॥
 हा तातेति प्रजल्पन्तीं तां सतीं कानने सदा। भीमाख्यभिल्लराजेन दृष्ट्वा नीत्वा स्वपल्लिकाम् ॥१८॥

कमलों से मुख भी ऊँचा नहीं किया जाता है। यदि सच पूछो तो उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करना मानों उसकी मर्यादा बाँध देना है, पर वह तो अमर्याद है, स्वर्ग की सुन्दरियों को भी दुर्लभ है।

चैत्र का महीना था। एक दिन अनन्तमती विनोदवश हो, अपने बगीचे में अकेली झूले पर झूल रही थी। इसी समय एक कुण्डलमंडित नामक विद्याधरों का राजा, जो कि विद्याधरों की दक्षिण श्रेणी के किन्नरपुर का स्वामी था, इधर ही होकर अपनी प्रिया के साथ वायुयान में बैठा हुआ जा रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि झूलती हुई अनन्तमती पर पड़ी उसकी स्वर्गीय सुन्दरता को देखकर कुण्डलमंडित काम के बाणों से बुरी तरह बीँधा गया। उसने अनन्तमती की प्राप्ति के बिना अपने जन्म को व्यर्थ समझा। वह उस बेचारी बालिका को उड़ा तो उसी वक्त ले जाता, पर साथ में प्रिया के होने से ऐसा अनर्थ करने के लिए उसकी हिम्मत न पड़ी। पर उसे बिना अनन्तमती के कब चैन पड़ सकता था ? इसलिए वह अपने विमान को शीघ्रता से घर लौटा ले गया और वहाँ अपनी प्रिया को रखकर उसी समय अनन्तमती के बगीचे में आ उपस्थित हुआ और बड़ी फुर्ती से उस भोली बालिका को उठा ले चला। उधर उसकी प्रिया को भी इसके कर्म का कुछ-कुछ अनुसन्धान लग गया था। इसलिए कुण्डलमंडित तो उसे घर पर छोड़ आया था, पर वह घर पर न ठहर कर उसके पीछे-पीछे हो चली। जिस समय कुण्डलमंडित अनन्तमती को लेकर आकाश की ओर जा रहा था कि उसकी दृष्टि अपनी प्रिया पर पड़ी। उसे क्रोध के मारे लाल मुख किये हुई देखकर कुण्डलमंडित के प्राणदेवता एक साथ शीतल पड़ गये। उसके शरीर को काटो तो खून नहीं। ऐसी स्थिति में अधिक गोलमाल होने के भय से उसने बड़ी फुर्ती के साथ अनन्तमती को एक पर्णलध्वी नाम की विद्या के आधीन कर उसे एक भयंकर वनी में छोड़ देने को आज्ञा दे दी और आप पत्नी के साथ घर लौट गया और उसके सामने अपनी निर्दोषता का यह प्रमाण पेश कर दिया कि अनन्तमती न तो विमान में उसे देखने को मिली और न विद्या के सुपुर्द करते समय कुण्डलमंडित ने ही उसे देखने दी ॥१२-१७॥

उस भयंकर वनी में अनन्तमती बड़े जोर-जोर से रोने लगी, पर उसके रोने को सुनता भी कौन? वह तो कोसों तक मनुष्यों के पदचार से रहित थी। कुछ समय बाद एक भीलों का राजा शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला। उसने अनन्तमती को देखा। देखते ही वह भी काम के बाणों से घायल हो गया और उसी समय उसे उठाकर अपने गाँव में ले गया। अनन्तमती तो यह समझी कि देव ने मुझे इसके हाथ सौंपकर मेरी रक्षा की है और अब मैं अपने घर पहुँचा दी जाऊँगी। पर नहीं, उसकी यह समझ ठीक नहीं थी। वह छुटकारे के स्थान में एक और नई विपत्ति के मुख में फँस गई ॥१८॥

करोमि त्वां महाराज्ञीं ददामि बहुसम्पदम्। मामिच्छेति भणित्वा सा नेच्छन्ती वातिवित्तकम् ॥१९॥
 रात्रौ प्रभोक्तुमारब्धा तदा तच्छीलपुण्यतः। वनदेवतया तस्य ताडनाद्युपसर्गकः ॥२०॥
 कृतः काचिदियं देवी महासामर्थ्यसंयुता। भिल्लेनेति विचार्योच्चैः सा कन्या कमलेक्षणा ॥२१॥
 पुष्पकाख्यमहासार्थवाहकस्य समर्पिता। सोपि तद्रूपसंसक्तः प्रोवाच मलिनं वचः ॥२२॥
 एतान्याभरणान्युच्चैर्नानासद्वस्त्रसञ्चयम्। गृहाण तव दासोस्मि मामिच्छेति प्रणष्टधीः ॥२३॥

राजा उसे अपने महल ले जाकर बोला-बाले, आज तुम्हें अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि एक राजा तुम पर मुग्ध है और वह तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाना चाहता है। प्रसन्न होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करो और अपने स्वर्गीय समागम से उसे सुखी करो। वह तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा है तुम्हें वनदेवी समझकर अपना मन चाहा वर माँगता है। उसे देकर उसकी आशा पूरी करो। बेचारी भोली अनन्तमती उस पापी की बातों का क्या जवाब देती ? वह फूट-फूटकर रोने लगी और आकाश पाताल एक करने लगी। पर उसकी सुनता कौन? वह तो राज्य ही मनुष्य जाति के राक्षसों का था ॥१९॥

भील राजा के निर्दयी हृदय में तब भी अनन्तमती के लिए कुछ भी दया नहीं आई। उसने और भी बहुत-बहुत प्रार्थना की, विनय-अनुनय किया, भय दिखाया, पर अनन्तमती ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया किन्तु यह सोचकर कि इन नारकियों के सामने रोने धोने से कुछ काम नहीं चलेगा, उसने उसे फटकारना शुरू किया। उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगीं, उसका चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया। सब कुछ हुआ, पर उस भील राक्षस पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसने अनन्तमती से बलात्कार करना चाहा। इतने में उसके पुण्य प्रभाव से, नहीं, शील के अखंड बल से वनदेवी ने आकर अनन्तमती की रक्षा की और उस पापी को उसके पाप का खूब फल दिया और कहा-नीच, तू नहीं जानता यह कौन है? याद रख यह संसार की पूज्य एक महादेवी है, जो इसे तूने सताया कि समझ तेरे जीवन की कुशल नहीं है। यह कहकर वनदेवी अपने स्थान पर चली गई। उसके कहने का भीलराज पर बहुत असर पड़ा और पड़ना चाहिए था क्योंकि थी तो वह देवी ही न ? देवी के डर के मारे दिन निकलते ही उसने अनन्तमती को एक साहूकार के हाथ सौंपकर उससे कह दिया कि इसे इसके घर पहुँचा दीजियेगा। पुष्पक सेठ ने उस समय तो अनन्तमती को उसके घर पहुँचा देने का इक़रार कर भीलराज से ले ली। पर यह किसने जाना कि उसका हृदय भी भीतर से पापपूर्ण होगा। अनन्तमती को पाकर वह समझने लगा कि मेरे हाथ अनायास स्वर्ग की सुन्दरी लग गई। यह यदि मेरी बात प्रसन्नता पूर्वक मान ले तब तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे पंजे से छूट कर भी तो यह नहीं जा सकती। यह विचार कर उस पापी ने अनन्तमती से कहा-सुन्दरी, तुम बड़ी भाग्यवती हो, जो एक नर-पिशाच के हाथ से छूटकर पुण्य पुरुष के सुपुर्द हुई। कहाँ तो यह तुम्हारी अनिन्द्य स्वर्गीय सुन्दरता और कहाँ वह भील राक्षस, कि जिसे देखते ही हृदय काँप उठता है? मैं तो आज अपने को देवों से भी कहीं बढ़कर भाग्यशाली समझता हूँ, जो मुझे अनमोल स्त्री रत्न सुलभता के साथ प्राप्त हुआ। भला, बिना

तयोक्तं यादृशं मेस्ति प्रियदत्तः पितापरः। तादृशस्त्वमपि भ्रष्ट मावादीः पापदं वचः ॥२४॥
इत्यादिकं स्थिरं वाक्यं समाकर्ण्यैव पापिना। सार्थवाहेन चानीयायोध्यायां सुदृढव्रता ॥२५॥
कामसेनाख्यकुट्टिन्याः पापिन्याः सा समर्पिता। कः कस्य दीयते दोषो विचित्रा कर्मणां स्थितिः ॥२६॥

महाभाग्य के कहीं ऐसा रत्न मिल सकता है? सुन्दरी, देखती हो, मेरे पास अटूट धन है, अनन्त वैभव है, पर उस सबको तुम पर न्यौछावर करने को तैयार हूँ और तुम्हारे चरणों का अत्यन्त दास बनता हूँ। कहो, मुझ पर प्रसन्न हो ? मुझे अपने हृदय में जगह दोगी न ? दो और मेरे जीवन को, मेरे धन-वैभव को सफल करो ॥२०-२३॥

अनन्तमती ने समझा था कि इस भले मानस की कृपा से मैं सुखपूर्वक पिताजी के पास पहुँच जाऊँगी, पर वह बेचारी पापियों के पापी हृदय की बात को क्या जाने? उसे जो मिलता था, उसे वह भला ही समझती थी। यह स्वाभाविक बात है कि अच्छे को संसार अच्छा ही दिखता है। अनन्तमती ने पुष्पक सेठ की पापपूर्ण बातें सुनकर बड़े कोमल शब्दों में कहा-महाशय, आपको देखकर तो मुझे विश्वास हुआ था कि अब मेरे लिए कोई डर की बात नहीं रही। मैं निर्विघ्न अपने घर पर पहुँच जाऊँगी, क्योंकि मेरे एक दूसरे पिता मेरी रक्षा के लिए आ गये हैं। पर मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आप सरीखे भले मानस के मुँह से और ऐसी नीच बातें ? जिसे मैंने रस्सी समझकर हाथ में लिया था, मैं नहीं समझती थी कि वह इतना भयंकर सर्प होगा। क्या यह बाहरी चमक-दमक और सीधापन केवल दाम्भिकपना है? केवल हंसों में गणना कराने के लिए है? यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें तुम्हारे इस ठगी वेष को, तुम्हारे कुल को, तुम्हारे धन-वैभव को और तुम्हारे जीवन को धिक्कार देती हूँ, अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखती हूँ। जो मनुष्य केवल संसार को ठगने के लिए ऐसे मायाचार करता है, बाहर धर्मात्मा बनने का ढोंग रचता है, लोगों को धोखा देकर अपने मायाजाल में फँसाता है, वह मनुष्य नहीं है किन्तु पशु है, पिशाच है, राक्षस है। वह पापी मुँह देखने योग्य नहीं, नाम लेने योग्य नहीं। उसे जितना धिक्कार दिया जाये थोड़ा है। मैं नहीं जानती थी कि आप भी उन्हीं पुरुषों में से एक होंगे। अनन्तमती और भी कहती, पर वह ऐसे कुल कलंक नीचों के मुँह लगाना उचित नहीं समझ चुप हो रही। अपने क्रोध को वह दबा गई ॥२४॥

उसकी जली भुनी बातें सुनकर पुष्पक सेठ की अक्ल ठिकाने आ गई। वह जलकर खाक हो गया, क्रोध से उसका सारा शरीर काँप उठा, पर तब भी अनन्तमती के दिव्य तेज के सामने उससे कुछ करते नहीं बना। उसने अपने क्रोध का बदला अनन्तमती से इस रूप में चुकाया कि वह उसे अपने शहर में ले जाकर एक कामसेना नाम की कुट्टिनी के हाथ सौंप दिया। सच बात तो यह है कि यह सब दोष दिया किसे जा सकता है किन्तु कर्मों की ही ऐसी विचित्र स्थिति है, जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। इसमें नई बात कुछ नहीं है ॥२५-२६॥

वेश्यायापि तयानेकप्रकारैश्चालिता सती। मेरोः सच्चूलिकेवासौ नाचलच्छीलशैलतः ॥२७॥
 येषां संसारभीरूणां न्यायोपार्जितवस्त्वपि। कदाचित्प्रीतये न स्यात्तन्मतिः किं कुकर्मसु ॥२८॥
 तदा तयापि कुट्टिन्या सिंहराजमहीभुजः। समर्पिता तथा बाला तस्याः सद्रूपयौवनम् ॥२९॥
 संविलोक्य सुलुब्धेन तेन रात्रौ दुरात्मना। हठात्सेवितुमारब्धा सा सती भुवनोत्तमा ॥३०॥
 तदा तद्व्रतमाहात्म्यात्पुरदेवतया क्रुधा। उपसर्गो महाश्चक्रे तस्य दुष्कर्मणस्ततः ॥३१॥
 निस्सारिता सुभीतेन भूभुजा तेन मंदिरात्। सापि पञ्चनमस्कारं संस्मरन्ती सुखप्रदम् ॥३२॥
 क्वचिद्देशे स्थिता यावत्तस्याः पुण्यप्रभावतः। पद्मश्रीरार्यिका वीक्ष्य तां ज्ञात्वा श्रावकोत्तमाम् ॥३३॥

कामसेना ने भी अनन्तमती को कष्ट देने में कुछ कसर नहीं रखी। जितना उससे बना उसने भय से, लोभ से उसे पवित्र पथ से गिराना चाहा, उसके सतीत्व धर्म को भ्रष्ट करना चाहा पर अनन्तमती उससे नहीं डिगी। वह सुमेरु के समान निश्चल बनी रही। ठीक तो है जो संसार के दुःखों से डरते हैं, वे ऐसे भी सांसारिक कामों के करने से घबरा उठते हैं, जो न्याय मार्ग से भी क्यों न प्राप्त हुए हों, तब भला उन पुरुषों की ऐसे घृणित और पाप कार्यों में कैसे प्रीति हो सकती है? कभी नहीं होती ॥२७-२८॥

कामसेना ने उस पर अपना चक्र चलता न देखकर उसे एक सिंहराज नाम के राजा को सौंप दिया। बेचारी अनन्तमती का जन्म ही न जाने कैसे बुरे समय में हुआ था, जो वह जहाँ पहुँचती वहीं आपत्ति उसके सिर पर सवार रहती। सिंहराज भी एक ऐसा ही पापी राजा था। वह अनन्तमती के देवांगना दुर्लभ रूप को देखकर उस पर मोहित हो गया। उसने भी उससे बहुत हाथाजोड़ी की, पर अनन्तमती ने उसकी बातों पर कुछ ध्यान न देकर उसे भी फटकार डाला। पापी सिंहराज ने अनन्तमती का अभिमान नष्ट करने को उससे बलात्कार करना चाहा। पर जो अभिमान मानवी प्रकृति का न होकर अपने पवित्र आत्मीय तेज का होता है, भला, किसकी मजाल जो उसे नष्ट कर सके? जैसे ही पापी सिंहराज ने उस तेजोमय मूर्ति की ओर पाँव बढ़ाया कि उसी वनदेवी ने, जिसने एक बार पहले भी अनन्तमती की रक्षा की थी, उपस्थित होकर कहा—खबरदार! इस सती देवी का स्पर्श भूलकर भी मत करना, नहीं तो समझ लेना कि तेरा जीवन जैसे संसार में था ही नहीं। इसके साथ ही देवी उसे उसके पापकर्मों का उचित दण्ड देकर अन्तर्हित हो गई। देवी को देखते ही सिंहराज का कलेजा काँप उठा। वह चित्रलिखे सा निश्चेष्ट हो गया। देवी के चले जाने पर बहुत देर बाद उसे होश हुआ। उसने उसी समय नौकर को बुलवाकर अनन्तमती को जंगल में छोड़ आने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा का पालन हुआ। अनन्तमती एक भयंकर वन में छोड़ दी गई ॥२९-३१॥

अनन्तमती कहाँ जायेगी, किस दिशा में उसका शहर है और वह कितनी दूर है? इन सब बातों का यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था, तब भी वह पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर वहाँ से आगे बढ़ी और फल-फूलादि से अपना निर्वाह कर वन, जंगल, पर्वतों को लाँघती हुई अयोध्या में पहुँच गई। वहाँ उसे एक पद्मश्री नाम की आर्यिका के दर्शन हुए। आर्यिका ने अनन्तमती से उसका परिचय पूछा। उसने अपना

दृष्ट्वा तस्याश्चरित्रं च स्वान्तिके परमादरात्। स्थापयामास पूतात्मा सतां वृत्तं परार्थकृत् ॥३४॥
 अथानन्तमतीशोकवह्निस्तप्तमानसः। प्रियदत्तो महाश्रेष्ठी गृहान्निर्गत्य पुण्यधीः ॥३५॥
 तददुःखहानये कैश्चित्सज्जनैः परिवेष्टितः। श्रीमज्जिनेन्द्रसत्तीर्थयात्रां कुर्वन्सुखप्रदाम् ॥३६॥
 अयोध्यानगरीं प्राप्य सन्ध्यायां स गुणोज्ज्वलः। तत्रस्थ जिनदत्ताख्यश्यालकस्य गृहं गतः ॥३७॥
 तेन श्रीजिनदत्तेन कृत्वा प्राघूर्णकक्रियाम्। सुखं पृष्टो जगौ श्रेष्ठी दुःखदं निजवृत्तकम् ॥३८॥
 ततः प्रातः समुत्थाय प्रियदत्तोतिधार्मिकः। स्नानादिकं विधायोच्चैर्गतो गेहं जिनेशिनाम् ॥३९॥
 तदा कर्तुं च सद्भोज्यं चतुष्कं दातुमङ्गणे। जिनदत्तस्त्रियाहूता पद्मश्रीक्षान्तिकाश्रिता ॥४०॥
 कन्या सापि समागत्य भोज्यं कृत्वामृतोपमम्। दत्त्वा गणे चतुष्कं च प्रीतितो वसतिं गता ॥४१॥
 ततो देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्राद्यैः समर्चिताः। जिनेन्द्रप्रतिमाः श्रेष्ठी समभ्यर्च्य समागतः ॥४२॥

सब परिचय देकर अपने पर जो-जो विपत्ति आई थी और उससे जिस-जिस प्रकार अपनी रक्षा हुई थी उसका सब हाल आर्यिका को सुना दिया। आर्यिका उसकी कथा सुनकर बहुत दुःखी हुई। उसे उसने एक सती-शिरोमणि रमणी-रत्न समझ कर अपने पास रख लिया। सच है सज्जनों का व्रत परोपकारार्थ ही होता है ॥३२-३४॥

उधर प्रियदत्त को जब अनन्तमती के हरे जाने का समाचार मालूम हुआ तब वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसके वियोग से वह अस्थिर हो उठा। उसे घर श्मशान सरीखा भयंकर दिखने लगा। संसार उसके लिए सूना हो गया। पुत्री के विरह से दुःखी होकर तीर्थयात्रा के बहाने से वह घर से निकल खड़ा हुआ। उसे लोगों ने बहुत समझाया, पर उसने किसी की बात को न मानकर अपने निश्चय को नहीं छोड़ा। कुटुम्ब के लोग उसे घर पर न रहते देखकर स्वयं भी उसके साथ-साथ चले। बहुत से सिद्धक्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रों की यात्रा करते-करते वे अयोध्या में आये। वहीं पर प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। प्रियदत्त उसी के घर पर ठहरा। जिनदत्त ने बड़े आदर सम्मान के साथ अपने बहनोई की पाहुनगति की। इसके बाद स्वस्थता के समय जिनदत्त ने अपनी बहिन आदि का समाचार पूछा। प्रियदत्त ने जैसी घटना बीती थी, वह सब उससे कह सुनाई। सुनकर जिनदत्त की भी अपनी भानजी के बाबत बहुत दुःख हुआ। दुःख सभी को हुआ पर उसे दूर करने के लिए सब लाचार थे। कर्मों की विचित्रता देखकर सब ही को सन्तोष करना पड़ा ॥३५-३८॥

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और स्नानादि करके जिनदत्त तो जिनमन्दिर चला गया। इधर उसकी स्त्री भोजन की तैयारी करके पद्मश्री आर्यिका के पास जो बालिका थी, उसे भोजन करने को और आँगन में चौक पूरने को बुला लाई। बालिका ने आकर चौक पूरा और बाद भोजन करके वह अपने स्थान पर लौट आई ॥३९-४१॥

जिनदत्त के साथ प्रियदत्त भी भगवान् की पूजा करके घर पर आया। आते ही उसकी दृष्टि चौक पर पड़ी। देखते ही उसे अनन्तमती की याद हो उठी। वह रो पड़ा। पुत्री के प्रेम से उसका हृदय व्याकुल

तच्चतुष्कं समालोक्य स्मृत्वानन्तमतीं स ताम्। अश्रुपातेन संयुक्तो जगाद प्रियदत्तवाक् ॥४३॥
 ययेदं मण्डनं चक्रे सा समानीयतां द्रुतम्। ततस्तैः सुजनैस्तस्य सुतामानीय दर्शिता ॥४४॥
 निर्गलच्छोकपानीयपूरपूरितलोचनाम्। समालिङ्ग्य सतां श्रेष्ठी प्रोवाच मधुरं वचः ॥४५॥
 भो पुत्रि त्वं महाशीलसलिलक्षालिताखिलः। पापकर्मसन्दोहपापिना केन संहता ॥४६॥
 केन वात्र समानीता शून्यं कृत्वा ममालयम्। संपृष्टेति सुता प्राह सर्वं तद्वृत्तकं निजम् ॥४७॥
 तदा श्रीजिनदत्तेन तयोर्मैलापके तराम्। चक्रे महोत्सवः पुर्या सन्तुष्टेन स्वचेतसा ॥४८॥
 प्रियदत्तस्ततः प्राह भो सुते निजमन्दिरम्। एहि संगम्यतेऽस्माभिः सानन्दं सुमनोहरम् ॥४९॥
 सा चोवाच तदा पुत्री दृष्टं तात मयाधुना। कष्टं संसारवैचित्र्यं ततो दापय मे तपः ॥५०॥
 वल्लीवत्कोमलाङ्गी त्वं जैनीदीक्षां सुदुःसहं। कियत्कालं सुते तिष्ठ धर्मध्यानेन मन्दिरे ॥५१॥
 पश्चात्ते वाञ्छितं पुत्रि पुण्यतः सम्भविष्यति। इत्यादिकोमलालापैः श्रेष्ठिना गुणशालिना ॥५२॥
 निषेध्यापि तथा पुत्री महावैराग्यमण्डिता। पद्मश्रीक्षान्तिका पार्श्वे जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम् ॥५३॥

हो गया। उसने रोते-रोते कहा-जिसने यह चौक पूरा है, क्या मुझ अभागे को उसके दर्शन होंगे। जिनदत्त अपनी स्त्री से उस बालिका का पता पूछकर जहाँ वह थी, वहीं दौड़ा गया और झट से उसे अपने घर ले लाया। बालिका को देखते ही प्रियदत्त के नेत्रों से आँसू बह निकले। उसका गला भर आया। आज वर्षों बाद उसे अपनी पुत्री के दर्शन हुए। बड़े प्रेम के साथ उसने अपनी प्यारी पुत्री को छाती से लगाया और उसे गोदी में बैठाकर उससे एक-एक बातें पूछना शुरू कीं। उसके दुःखों का हाल सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ। उसने कर्मों का, इसलिए कि अनन्तमती इतने कष्टों को सहकर भी अपने धर्म पर दृढ़ रही और कुशलपूर्वक अपने पिता से आ मिली, बहुत-बहुत उपकार माना। पिता-पुत्री का मिलाप हो जाने से जिनदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने इस खुशी में जिनभगवान् का रथ निकलवाया, सबका यथायोग्य आदर सम्मान किया और खूब दान किया ॥४२-४८॥

इसके बाद प्रियदत्त अपने घर जाने को तैयार हुआ। उसने अनन्तमती से भी चलने को कहा। वह बोली-पिताजी, मैंने संसार की लीला को खूब देखा है। उसे देखकर तो मेरा जी काँप उठता है। अब मैं घर पर नहीं चलूँगी। मुझे संसार के दुःखों से बहुत डर लगता है। अब तो आप दया करके मुझे दीक्षा दिलवा दीजिये। पुत्री की बात सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ, पर अब उसने उससे घर पर चलने का विशेष आग्रह न करके केवल इतना कहा कि-पुत्री, तेरा यह नवीन शरीर अत्यन्त कोमल है और दीक्षा का पालन करना बड़ा कठिन है उसमें बड़ी-बड़ी कठिन परीषह सहनी पड़ती है इसलिए अभी कुछ दिनों के लिए मन्दिर ही में रहकर अभ्यास कर और धर्मध्यान पूर्वक अपना समय बिता। इसके बाद जैसा तू चाहती है, वह स्वयं ही हो जायेगा। प्रियदत्त ने इस समय दीक्षा लेने से अनन्तमती को रोका, पर उसके तो रोम-रोम में वैराग्य प्रवेश कर गया था; फिर वह कैसे रुक सकती थी? उसने मोह-जाल तोड़कर उसी समय पद्मश्री आर्यिका के पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ही ली। दीक्षित होकर

समादाय लसद्भक्त्या तथानन्तमती दृढम्। पक्षमासोपवासदितपः कृत्वा सुदारुणम् ॥५४॥
संन्यासविधिना मृत्वा स्मरन्ती जिनपङ्कजम्। सहस्रारे सुरो जातः प्रोल्लसन्मुकुटादिभिः ॥५५॥
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां साभवद्भक्तिभाजनम्। नाना सत्सम्पदोपेतः सुपुण्यात्किं न जायते ॥५६॥
क्रीडामात्रगृहीतशीलममलं सम्पाल्य शर्मप्रदं नाना रत्नसुवर्णभोगनिचये निष्काङ्क्षितामाश्रिता।
या सानन्तमती जिनेन्द्रचरणाम्भोजात्तभृङ्गीव्रतात्स्वर्गे देवमहर्द्धिकोजनि तरां दद्यात्सतां मङ्गलम् ॥५७॥

इति श्रीकथाकोशे निष्काङ्क्षिताङ्गेऽनन्तमतीकथा समाप्ता।

८. उद्वायनराज्ञः कथा

नत्वारहतं जगत्पूज्यं भारतीं गुरुपङ्कजम्। वक्ष्ये निर्विचिकित्साङ्गे कथामुद्वायनप्रभोः ॥१॥
इहैव भरतक्षेत्रे देशे कच्छाभिधे शुभे। पुरे रौरवके नाम्ना सुधीरुद्वायनप्रभुः ॥२॥
सद्दृष्टिर्जिनदेवानां पादपद्मार्चने रतः। दाता भोक्ता विचारज्ञः प्रजानां सुतरां हितः ॥३॥
तस्य प्रभावती राज्ञी साध्वी पूर्णेन्दुनिर्मला। दानपूजाव्रताम्भोभिः प्रक्षालितमनोमला ॥४॥

अनन्तमती खूब दृढ़ता के साथ तप तपने लगी। महिना-महिना के उपवास करने लगी, परीषह सहने लगी। उसकी उमर और तपश्चर्या देखकर सबको दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती थी। अनन्तमती का जब तक जीवन रहा तब तक उसने बड़े साहस से अपने व्रत का निर्वहन किया। अन्त में वह संन्यास मरण कर सहस्रार स्वर्ग में जाकर देव हुई। वहाँ वह नित्य नये रत्नों के स्वर्गीय भूषण पहनती है, जिनभगवान् की भक्ति के साथ पूजा करती है, हजारों देव देवाङ्गनायें उसकी सेवा में रहती हैं। उसके ऐश्वर्य का पार नहीं और न उसके सुख ही की सीमा है। बात यह है कि पुण्य के उदय से क्या-क्या नहीं होता ? ॥४९-५६॥

अनन्तमती को उसके पिता ने केवल विनोद से शीलव्रत दे दिया था। पर उसने उसका बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया, कर्मों के पराधीन सांसारिक सुख की उसने स्वप्न में भी चाह नहीं की। उसके प्रभाव से वह स्वर्ग में जाकर देव हुई, जहाँ सुख का पार नहीं। वहाँ वह सदा जिनभगवान् के चरणों में लीन रहकर बड़ी शान्ति के साथ अपना समय बिताती है। सती-शिरोमणि अनन्तमती हमारा भी कल्याण करे ॥५७॥

८. उद्वायन राजा की कथा

संसार-श्रेष्ठ जिनभगवान्, जिनवाणी और जैन ऋषियों को नमस्कार कर उद्वायन राजा की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने सम्यक्त्व के तीसरे निर्विचिकित्सा अंग का पालन किया है ॥१॥

उद्वायन रौरवक नामक शहर के राजा थे, जो कि कच्छदेश के अन्तर्गत था। उद्वायन सम्यग्दृष्टि थे, दानी थे, विचारशील थे, जिनभगवान् के सच्चे भक्त थे और न्यायी थे। सुतरां प्रजा का उन पर बहुत प्रेम था और वे भी प्रजा के हित में सदा उद्यत रहा करते थे ॥२-३॥

उसकी रानी का नाम प्रभावती था। वह भी सती थी, धर्मात्मा थी। उसका मन सदा पवित्र रहता था। वह अपने समय को प्रायः दान, पूजा, व्रत, उपवास, स्वाध्यायादि में बिताती थी ॥४॥